अभिधानचिंतामणिनाममाला और उसका वैशिष्ट्य

अनेकान्त कुमार जैन

हेमचन्द्राचार्यस्य तिस्त्रः कृतयः– सिद्धहेमशब्दानुशासनं, काव्यानुशासनम्, अभिधानचिन्तामणिनाममाला इति प्रसिद्धाः। तृतीया कृतिस्तत्र जैनकोशपरम्परायाः प्रातिनिध्यं भजति। एतस्य कौशस्य परिचयं, तद्वैशिष्ट्यञ्च प्रस्तौति निबन्धः।

जैन संस्कृत कोश साहित्य की परम्परा में सुप्रसिद्ध जैनाचार्य हेमचन्द्रसूरि कृत अभिधानचिंतामणिनाममाला ही एक ऐसा कोश है जिसे जैनकोश परम्परा का प्रतिनिधि कोश कहा जा सकता है। विद्वानों की मान्यता है कि आचार्य हेमचंद्र ने अपने "सिद्धहेम शब्दानुशासन" के बाद 'काव्यानुशासन' और उसके बाद 'अभिधानचिन्तामणिनाममाला' कोश की विक्रम की १३वीं शताब्दी में रचना की थी।

आचार्य हेमचन्द्र ने इस कोश के आरम्भ में स्पष्ट कहा है कि शब्दानुशासन के समस्त अंगों की रचना प्रतिष्ठित हो जाने के बाद इस कोश ग्रंथ की रचना की गई है–

प्रणिपत्यार्हतः सिद्धसाङ्गशब्दानुशासनः।
रूढ–यौगिक–मिश्रणनाम्नां मालां तनोम्यहम्।।

हेमचन्द्र ने व्याकरण-ज्ञान को सक्रिय बनाने के लिये और विद्यार्थियों को भाषा का ज्ञान सुलभ करने के लिये संस्कृत और देष्य भाषा के कोशों की रचना इस प्रकार की है–

(क) अभिधानचिंतामणि नाममाला सटीका

(ख) अनेकार्थसंग्रह

(ग) निघण्टु संग्रह

(घ) देषीनाममाला (रयणावली)

आचार्य हेमचन्द्र ने कोश की उपयोगिता बताते हुए कहा है कि बुधजन वक्तृत्व और कवित्व को विद्वत्ता का फल बतलाते हैं, किंतु ये दोनों शब्दज्ञान के बिना सिद्ध नहीं हो सकते–

वक्तृत्वं च कवित्व च विद्वत्तायाः फलं विदुः।
शब्दज्ञानाकृते तन्न द्वयमप्युपपद्यते।।

प्रतिपाद्य विषय–

अभिधानचिन्तामणि के प्रथम खण्ड में तीर्थकरों के नाम, प्रत्येक तीर्थंकर के पर्यायवाची शब्द, तीर्थंकरों के माता-पिताओं के नाम, तीर्थंकरों के अतिषयों की नामावली, भूत-भविष्यत् और वर्तमान कालीन चौबीस तीर्थंकरों के नाम, गणधरों के नाम, तीर्थंकरों के ध्वज चिन्ह, अन्तिम केवली, श्रुतकेवली, तीर्थंकरों की जन्मभूमियाँ आदि का वर्णन है। इस खण्ड को दवाधिदेव काण्ड कहते हैं तथा इसमें ८६ श्लोक हैं।

द्वितीय देवकाण्ड में २५० श्लोक हैं, इसमें देवों, उनकी वस्तुओं और नगरों के नाम हैं। तृतीय मर्त्य काण्ड में ५९७ श्लोक हैं। इसमें मनुष्यों और उनके व्यवहार में आने वाले पदार्थों के नाम हैं।

चतुर्थ, तिर्यक् काण्ड में ४२३ श्लोक हैं। इसमें पशु, पक्षी, जंतु, वनस्पति, खनिज आदि के नाम हैं।

पंचम नारक काण्ड में ७ श्लोक हैं। इसमें नरकवासियों के नाम हैं।

षष्ठ साधारण काण्ड में १७८ श्लोक हैं, जिनमें ध्वनि, सुगंध और सामान्य पदार्थों के नाम हैं।

इस प्रकार ग्रंथ में कुल मिलाकर १५४१ श्लोक हैं। आचार्य हेमचन्द्र ने नामावली अत्यन्त वैज्ञानिक शैली में दी है। द्वितीय काण्ड में जीवों की नामावली चार श्लोकों में दी है और त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और असंज्ञी पञ्चन्द्रिय जीवों की नामावली भी पूरे विस्तार के साथ लगभग २० श्लोकों में वर्णित की गयी है। यहाँ उदाहरण के लिये दो इन्द्रिय जीवों के पर्यायवाची शब्दों को उद्धृत किया जा रहा है–

नीलंगुः कृमिस्तेजः क्षुद्रकीटो बहिर्भवः।
पुलकास्तूभयेऽपि स्युः कीकासाः कृमयोऽणवः।।

काष्ठकीटो घुणः गण्डूपदः किंचुलकः कुसूः।
भूलता गण्डूपदी तु षिली अस्पथा जलौकसः।।

जुलालोका जलूका च जलौका जलसर्पिणी।
मुक्तास्फोटोऽब्धिमडूकी षुक्तिः कम्बुस्तु वारिजः।।

त्रिरेखःषोडषावर्तः शंखः अथ क्षुद्रकम्बवः।
शंरवनकाः क्षुल्लकाष्च शम्बूकास्त्वम्बुमात्रजाः।।

कृमि, नीलंगु, क्षुद्रकीट, पुलक, अणुकृमि, कीकस, काष्ठकीट, घुण, गण्डूपद, किंचुलक, कुसुभूलता, गण्डूपदी, सिली, अस्त्रपा, जलौकस, जलालोक, जलूक, जलौक, जलसर्पी, मुक्तास्फोट, अब्धिममंडूकी, शुक्ति, कम्बू, शंख, वारिज, त्रिरेखा, षोडषावर्त्त, क्षुद्रकम्बव, शंखनल, क्षुल्लक, शम्बूक, कर्पद, हिरण्य, पणस्थिक, वराणट, दुर्नाम और दीर्घकोश - ये द्वीन्द्रिय जीवों के पर्यायवाची हैं।

गहन तुलनात्मक अध्ययन करने पर प्रतीत होगा कि इस प्रकार के पर्यायवाची में त्रस और स्थावरों के पर्यायवाची शब्दों का इतने विस्तार के साथ प्रतिपादन किया है कि संस्कृत भाषा के किसी भी कोश में इतने पर्यायवाची शब्दों का समावेश नहीं मिलेगा।[१]

शब्द सम्पदा का भण्डार

आचार्य हेमचन्द्र की मुख्य प्रतिज्ञा है : "रूढ़यौगिकमिश्राणां, नाम्नां मालां तनोम्यहम्" अर्थात् रूढ़, यौगिक और मिश्र तीनों प्रकार के शब्दों का संकलन कर उनका विस्तार करूँगा। सैकड़ों वर्षों से जिन शब्दों का प्रयोग रूढ़ हो चुका था, उनका यथास्थान उसी अर्थ में संकलन करना स्वाभाविक भी था। कोशकार ने इस बात का बराबर ध्यान रखा है कि रूढ़ शब्दों में से कोई छूटने न पाये। उदाहरण के लिए अमरकोश, विश्वप्रकाश तथा मेदिनी अनेकार्थक कोशों में "क्षुल्लक" शब्द के दो अर्थों का उल्लेख है: "क्षुल्लकः स्वल्पनीचयोः" थोड़ा, छोटा या नीच। 'अभिधानचिन्तामणि' में यह उल्लेख इस प्रकार है–

"क्षुद्रकम्बवः षंखनकाः क्षुल्लकाष्च।" – श्लोक १२०५

यद्यपि संस्कृत के सभी कोशों में थोड़े-बहुत देशी तथा लोकभाषा के शब्दों का संग्रह भी मिलता है, जैसा कि होरा, होलक, खटक्किका, कट्टार, खुड, खुंड, छाग, डल्लक और घुंटक आदि। सामान्यतः संस्कृत में 'क' स्वार्थिक प्रत्यय जोड़ कर अन्य भाषाओं से शब्दों के ग्रहण करने की प्रवृत्ति प्रचलित रही है। अतः टिटहरी के लिए 'टिट्टिभकः' मूली के लिए 'मूलकः', कटोरा के लिए 'कटोरकं', झांझ के लिए 'झल्लकं', डलिया के लिए 'डल्लकं' और करेला के लिए 'कटिल्लकं' आदि देशी शब्द कहे जाते हैं।

संस्कृत में अनेकार्थक शब्दों के विकास का भी रहस्य यही प्रतीत होता है। क्योंकि जब चूहे के लिए 'मूषक' या 'मूषिक' शब्द प्रचलित था, तब 'उन्दुरु' या 'उन्दूर' कहने का क्या कारण था? केवल इतना ही कि जिस समय जो संस्कृतकोश निर्मित हो रहा था, तब ये शब्द विशेष चलन में थे। अतः ऐसे शब्दों के साधारण रूप से कोई भी कोशकार नहीं छोड़ सकता था। फिर भी इस दृष्टि से 'त्रिकाण्डशेष' कोश विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इसमें मूषक के पर्यायवाची शब्द तीन (उन्दुरु, तुटुम और रन्ध्रवभ्रु) और छुछुन्दरी के चार पर्यायवाची शब्द दिए गए हैं– चिक, वेष्मनकुल, पुवृष और गन्धमूषिक। किन्तु 'अभिधानचिन्तामणि' में 'छछुन्दरी' शब्द का स्पष्ट अभिधान किया गया[२] जो निश्चित ही देश्य भाषाओं से आगत है।

'अभिधानचिन्तामणि' कोश में अनेक नवीन शब्दों का समावेश लक्षित होता है जो उसके पूर्व के संस्कृत कोशों में उपलब्ध नहीं होते। उदाहरणार्थ– चौल, चोटी, गोणी, हेरिक, कृमिला, समिता, पिण्डोलि, फेली, प्राज्जासन, फरक, छुरी, ईर्यापथ, संवर, इत्मी, तरवालिका, घाटी, झम्फान, खोल, पृषातक, पटाका, टंकपति, हैरिक, गन्दुक, मकुट, सिंघाण, सिंघाणक, गोनास, गोराटी, गोरुत, गोहिर, घुंटक, घुटिक, घूकारि, घृतेली, घोणम, घोल, चंडिल, चलचंचु, चिकिल, चिहुर, चीनक, चीनपिष्ट, चीरिल्लि, छगण, जडुलख जलालोका, जलसर्पिणी, जागुड, जोन्नाला, डिंगर, ढोकन, तन्तुल, तीर्थकर, तीर्थवाक्, दघ्न, भरूटक, भोलि, मनस्ताल, मिथ्यात्व, मुसटी, मूत्रपुट, मेरक, राटि, रुषा, वड्, खण, वण्ड, वर्चस्क, वाहिक, वोल्लाह, दोहित्थ, षूकल, श्वेतकोलक, सर्वमूषक, सार्पी, सार्व, सृपाटिका, स्थलश्रृंगार, हारहूरा इत्यादि। सम्भव है कि इनमें से कोई एक-दो शब्द किसी प्राचीन शब्दकोश में हों, जो हमारे देखने में न आए हों। किन्तु जानकारी के अनुसार ये अधिकतर नवीन शब्द हैं, जिनका उपयोग और संग्रह करके लेखक ने इन दुर्लभ शब्दों को भी सुरक्षित रखने में योग दिया।

अमरकोश, विश्वप्रकाश और मेदिनी कोशों के परिपेक्ष्य में अभिधानचिन्तामणि–

इन शब्दों के अध्ययन से यह भी निश्चय हो जाता है कि आचार्य हेमचन्द्र ने अमरकोश और उसकी परम्परा का अनुगमन किया है। अनेकार्थक कोशों में प्राचीनतम उपलब्ध 'विश्वप्रकाश' को आधार मानकर 'अभिधानचिन्तामणि' की रचना नहीं हुई। 'अमरकोश' के अनेक शब्दों का संकलन इस कोश में दिखता अवश्य है, किन्तु वे संस्कृत साहित्य में या लोक-जीवन में भी प्रचलित प्रतीत होते हैं।

जैनागम-परम्परा के कई शब्द अमरकोश में मिलते हैं, यथा– मिथ्यादृष्टि, मिथ्यामति, मुनि, मुनीन्द्र, जिन, अर्हत्, आश्रव आदि। इससे इस लोक प्रचलित मान्यता को पूर्ण बल मिलता है कि 'अमरकोश' मूलतः जैन परम्परा का ही कोशग्रन्थ रहा है।

'विश्वप्रकाश' कोश में कई ऐसे शब्द हैं जो अनेक संस्कृत कोशों में लक्षित नहीं होते। उनमें से कुछ शब्द इस प्रकार हैं– जैमुरि, मर्करा, एलावली, दुम्बरिका, चर्माङ्ग, लम्पा, चार्वटीर, कम्बिका, षिराला, कदैवत, वरधू, जराटक, वंषकम्बिका आदि। इस कोश में कोशकार के गढ़े हुए शब्द भी मिलते हैं, जैसे कि दध्यग्र (दही के ऊपर की मलाई), दुग्धाग्र (दूध के ऊपर की मलाई), वेणुसार (वंशलोचन), नीरविकार (समुद्रफेन) आदि। वे सब शब्द 'अभिधान-चिन्तामणि' में संकलित नहीं हुए हैं। परन्तु कवि महेश्वर की भाँति आचार्य हेमचन्द्र ने भी कुछ शब्द पढ़े हैं। उदाहरण के लिए कुछ शब्द ये हैं– जलमार्जार (जलबिलाव), जलवालिया (विद्युत), झलक्का (चिन्गारी), वायुवाह (धूम, धुआँ), अग्निवाह (धूम), तैलाटी (बर्र), वर्षकारी (झींगुर), इत्यादि। कहीं-कहीं 'मेदिनीकोश' का भी प्रभाव लक्षित होता है।[३] किन्तु कहीं-कहीं दोनों के अर्थ में भिन्नता भी लक्षित होता है। उदाहरण के लिए, 'अभिधानचिन्तामणि' में 'जंगल' का अर्थ निर्जल है, किन्तु 'मेदिनी' में निर्जन स्थान है।[४]

इसके अतिरिक्त 'अभिधानचिन्तामणि' में संकलित अनेक शब्द 'मेदिनी' मे परिलक्षित नहीं होते, जैसे कि चषाल, तैलपायिका, निषाटनी, पिक्क, विक्क, पारिन्द्र, पारीन्द्र, चिक्कस, गृहोलिका, षूलिको, षलल, षयु, विसार, षल्ली, वादाल, शंखमुख इत्यादि। इसका एक कारण यह भी है कि 'मेदिनी' अनेकार्थक कोश है।

प्रस्तुत कोश का वैशिष्ट्य–

'अभिधानचिन्तामणि' की एक विशेषता यह भी है कि इसमें पर्यायवाची शब्दों की संख्या बहुत है। एक 'मीन' शब्द के सोलह पर्यायवाची शब्द दिए हुए हैं[५] : मत्स्य, पृथुरोमा, झष, वैसरिण, अण्डज, संघचारी, स्थिरजि, आत्माषी, स्वकुलक्षय, विसार, षकली, षल्की, षम्बर, अनिमिष और तिमि। इसी प्रकार १७ प्रकार के धान्यों का वर्णन 'अभिधानचिन्तामणि' में किया गया है। फिर, भी उनकी पहचान भी बताई है। उदाहरण के लिए, पीला छोटा दाने का चावल 'कंगु' कहा गया है:

कङ्गुस्तु कङ्गुनी कङ्गुः प्रियङ्गुः पीततण्डुला। (११७६)

उड़द के सम्बन्ध में कहा गया है:

"माषस्तु मदनो नन्दी वृष्यो बीजवरो वसा।" (११७१)

इस कोश में सबसे अधिक नाम ११८ पार्वती के संकलित हैं।[६] इसी प्रकार सुन्दरता के पर्यायवाची २७ शब्द हैं।[७] निकट के वाचक २० पर्यायवाची शब्द हैं।[८] अन्य शब्दों के भी इसी प्रकार अधिक से अधिक पर्यायवाची शब्दों का संकलन लक्षित होता है। कई महत्वपूर्ण शब्दों के भी पर्यायवाची शब्द दिए गए हैं। जैन का पर्यायवाची शब्द अनेकान्तवादी दिया गया है। चार्वाक को लौकायतिक और वैशेशिक को 'कणाद' कहा गया है। अग्नि के २४ पर्यायवाची नामों का उल्लेख किया गया है। मुर्गे के १८ पर्यायवाची नाम और कोयल के ११ नामों का वर्णन किया गया है। 'नारककाण्ड' में इस धरती के नीचे सात भूमियों का नरक के पर्यायवाची शब्द का उल्लेख किया गया है। नरक सात हैं और पर्यायवाची नाम भी सात हैं। अन्य संस्कृत के शब्दकोशों में इन सात नरकों का उल्लेख नहीं मिलता।

आचार्य हेमचन्द्र के इस कोश में संस्कृत के अतिरिक्त प्राकृत भाषा के शब्दों का भी समावेश परिलक्षित होता है। जैसा कि– पट्टन, बोहित्थ, बप्पीह, खडक्किका, कण्डोलक, चीटी, सिङ्घाण, सिङ्घाणक, झम्पा और गोविन्द आदि। कुछ देशी शब्द भी इस कोश में लक्षित होते हैं। वे इस प्रकार हैं[९]–

१. लडह– रमणीय। हिन्दी में 'लाड' (लाड़-प्यार)।

२. चिल्ल– एक पक्षी। हिन्दी में 'चील'।

३. लड्डुक– मोदक (अभि० १६४०)। हिन्दी में लड्डू, बुंदेली में लडुआ, राजस्थानी में लाडू, गुजराती में 'लादु'।

४. खल्ल– चर्ममयी (अभि० १०२५)। हिन्दी में 'खाल'। खल्ला (देषी० २, ६६)

५. गेंदुल– गेंद (अभि० ६८९)। हिन्दी में 'गेंद', ब्रज-बुन्देली में गेंद।

६. तरवारि– तलवार (अभि० ७८२)। ब्रज, बुन्देली, गुजराती में 'तरवार'।

७. चालनी– चलनी (अभि० १०१८)। आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं में चलनी।

८. खटी– खड़ी मिट्टी (अभि १०३७)। राजस्थानी 'खड़ी', बंगला, उड़िया में 'खड़ी', मराठी में 'खड़ी' और गुजराती में 'खड़ी'।

९. कुरुल– भ्रमरालक (अभि० ५६९)। प्राकृत कुरुल (लट), जूनी गुजराती में 'कुरुल', मराठी में 'कुरुल'। द्रविड़ भाषाओं में 'कुरुल'।

१०. तम्बा– गाय (अभि० १२६६)। तंबा– गौ (देषीनाममाला ५,१)।

११. फुल्ल– फूला हुआ (अभि० ११२७)। पालि-प्राकृत 'फुल्ल)। आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं में 'फूल' अर्थ है।

१२. बप्पीह– पपीहा (अभि० १३२९)। वप्पीह (देषीनाममाला, ६,९०)।

१३. पुत्तिका– पतंगिका (श्वेत चींटी, अभि० १२१४)। कन्नड़ 'पुत्तु', तेलुगू 'पट्ट', परजी (द्रविड़ी) 'पुटकल'।

इनके अतिरिक्त कई अन्य ऐसे शब्द भी परिलक्षित होते हैं जिनका निश्चित पता नहीं है, पर वे देशी ही प्रतीत होते हैं। इन शब्दों में कुछ इस प्रकार हैं–

(१) पोटा, (२) वोटा, (३) चुन्दी, (४), पट्टी, (५) चोटी, इत्यादि। पाठ इस प्रकार है–

सा वारमुख्यालय चुन्दी कुट्टनी षम्भली समाः।
पोटा वोटा च चेटी च, दासी च कुटहारिका।। अभि०,५३३-३४

इसी प्रकार से संस्कृत के अन्य शब्दकोशों की भांति इसमें भी अन्य भाषाओं के परम्परागत शब्दों का भी उचित रूप से सन्निवेश परिलक्षित होता है। अतएव कई दृष्टियों से इस कोश का तुलनात्मक अध्ययन स्वतन्त्र रूप से शोध-खोज का महान् कार्य है।

अभिधानचिन्तामणि की मौलिक विशेषतायें–

इस कोश में अनेक विशेषताएं उपलब्ध होती हैं। सबसे पहली तो यह है कि हेमचन्द्र ने भी धनंजय के समान शब्दयोग से अनेक पर्यायवाची शब्दों को बनाने का विधान किया है, किन्तु इस विधान में "कविरूढ़या ज्ञेयोदाहरणावली" के अनुसार उन्हीं शब्दों को ग्रहण किया गया है, जो कवि सम्प्रदाय में प्रचलित हैं। जैसे पतिवाचक शब्दों में कान्ता, प्रियतमा, वधू, प्रणयिनी एवं निभा शब्दों को या इनमें समान अन्य शब्दों को जोड़ देने से पत्नी के नाम और कलत्रवाचक शब्दों में वर, रमण, प्रणयी, ष एवं प्रिय शब्दों को या इनके समान अन्य शब्दों को जोड़ देने से पतिवाचक शब्द बन जाते हैं। गौरी के पर्यायवाची बनाने के लिए शिव शब्द में उक्त शब्द जोड़ने पर शिवकान्ता, शिवप्रियतमा, शिववधू, शिवप्रणयिनी

आदि शब्द बनते हैं। निभका समानार्थक परिग्रह भी है, किन्तु जिस प्रकार शिवकान्ता शब्द ग्रहण किया जाता है, उस प्रकार शिवपरिग्रह नहीं। अतः कवि सम्प्रदाय में यह शब्द ग्रहण नहीं किया गया है।

कलत्रवाची गौरी शब्द में वर, रमण, प्रभृति, शब्द जोड़ने पर गौरीवर, गौरीरमण, गौरीश आदि शिवाचक शब्द बनते हैं। जिस प्रकार गौरीवर शब्द शिव का वाचक है, उस प्रकार गंगावर शब्द नहीं। यद्यपि कांतावाची गंगा शब्द में वर शब्द जोड़कर पतिवाचक शब्द बन जाते हैं, तो भी कवि सम्प्रदाय में इस शब्द की प्रसिद्धि नहीं होने से यह शिव के अर्थ में ग्राह्य नहीं है। हेमचन्द्र ने अपनी वृत्ति में इन सारी विशेषताओं को बतलाया है तथा 'शेशाष्च' में और भी अनेक कोशगत विशेषताओं पर प्रकाश डाला है।

दूसरी मौलिकता इस कोश की यह है कि इसमें अनेक ऐसे शब्द आये हैं जो अन्य कोशों में नहीं मिलते। अमरकोश में सुन्दर के पर्यायवाची सुन्दरम्, रुचिरम्, चारु, सुषमम्, साधु, शोभनम्, कान्तम्, मनोरमम्, रुच्यं, मनोज्ञं, मंजुः, मंजुलम्– ये बारह शब्द आये हैं। आचार्य हेमचन्द्र ने इसी सुन्दर के पर्यायवाची चारुः, हारिः, रुचिरं, मनोहरं, मनोहरं, वल्गुः, कान्तं, अभिरामम्, बन्धुरम्, वामम्, रुच्यं, सुशमम्, शोभनं, मंजुलम्, मंजुः, साधुः, रम्यम्, मनोरमम्, पेशलं, हृद्यं, काम्यं, कम्नं, कमनीयं, सौम्यं, मधुरम् और प्रियम् ये २६ शब्द बतलाये हैं। इतना ही नहीं, हेम ने अपनी वृत्ति में 'लडह' देशी शब्द को भी सौन्दर्यवाची ग्रहण किया है। इस प्रकार हेम ने एक ही शब्द के अनेक पर्यायवाची शब्दों को ग्रहण कर अपने इस कोश को खूब समृद्धिशाली बनाया है।

कुछ ऐसे नवीन शब्द भी इस कोश में आये हैं, जिनका अन्यत्र पाया जाना संभव नहीं है। गेहूँ के आटे के लिए समिता (३/६) जूठन के लिए फेला और पिण्डोलि (३/९०) बड़ी साली के लिए ज्येष्ठष्वसा और कुली, छोटी साली के लिए हाली, यन्त्रणी और केलिकुचिका (३/२१८-२१९) एवं बहुसन्तानवाली माता के लिए कमिला (३/२२२) शब्द आया है। इन शब्दों के प्रयोगों से ज्ञात होता है कि हेमचन्द्र का शब्दज्ञान कितना विशाल था।

हेमचन्द्र ने अपने इस संस्कृत कोश में जिन शब्दों का संकलन किया है, उन पर प्राकृत, अपभ्रंश और देशी भाषा के शब्दों का पूर्णतः प्रभाव लक्षित होता है। अनेक शब्द तो आधुनिक भाषाओं में भी दिखलायी पड़ते हैं। उदाहरण के लिए कुछ यहाँ शब्द उद्धृत किये जाते हैं–

१. पोलिका (३/६२) गुजराती में पोणी, ब्रजभाषा में पोनी।

२. मोदको लडुकष्च (शेष ३/६४)– हिन्दी में लड्डू गुजराती में लाडू।

३. चोटी (३/३३१) हिन्दी - चोटी, गुजराती - चोणी।

४. समौ कन्दुकगेन्दकौ - (३/३५३)– हिन्दी में गेन्द, ब्रजभाषा में गेंद।

५. हेरिको गूढ़पुरुषः (३/३९७) ब्रजभाषा में हेर का हेरना– देखना, गुजराती हेर।

६. तरवारि (३/४४६)ब्रजभाषा में तरवार, राजस्थानी में तलवार तथा गुजराती में तरवार।

७. जंगलो निर्जलः (४/ १९) ब्रजभाषा में जंगल, हिन्दी में जंगल।

८. सुरंगा तु सन्धिला स्याद् गूढ़मार्गो भुवोऽन्तरे (३/५१) ब्रजभाषा– हिन्दी तथा गुजराती तीनों में सुरंग।

९. निश्रेणी त्वधिरोहणी (४/७८) ब्रजभाषा नसेनी, गुजराती नीसरणी।

१०. चालनी तितउ (४/९४) ब्रज, राजस्थानी व गजराती में चालनी, हिन्दी में चालनी या छलनी।

११. पेटास्यान्मजूषा (४/८१) राजस्थानी में पेटी, गुजराती में पेटी, पेटो तथा ब्रजभाषा में पिटारी, पेटी।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि हेमचन्द्र की शब्दावली देशी भाषा की ओर विशेष झुकी हुई है। अभिधानचिंतामणि एक सर्वांगपूर्ण कोश है। इसके अध्ययन से संस्कृत भाषा के पांडित्य के साथ-साथ के नये मोड़ की जानकारी भी प्राप्त हो सकती है।[१०]

अभिधानचिन्तामणि की व्याख्या-साहित्य[११] :–

१. अभिधानचिन्तामणि स्वोपज्ञवृत्ति–

आचार्य हेमचन्द्र कृत इस स्वोपज्ञ वृत्ति में ५६ ग्रन्थकारों और ३१ ग्रन्थों का उल्लेख है। जहाँ पूर्व के अधिकारों से उनका मतभेद है वहीं आचार्य हेमचन्द्रसूरि ने अन्य ग्रन्थों और ग्रन्थकारों के नाम उद्धृत करके अपने मतभेद का स्पष्टीकरण किया है।

२.अभिधानचिंतामणि-टीका:

मुनि कुशलसागर ने 'अभिधानचिन्तामणि' कोश पर टीका की रचना की है। इसी प्रकार मुनि साधुरत्न ने भी एक टीका रची है।

३. अभिधानचिन्तामणि-सारोद्धार:

खरतरगच्छीय ज्ञानविमल के शिष्य बल्लभगणि ने वि० सं० १६६७ में 'अभिधानचिन्तामणि' पर 'सारोद्धार' नामक टीका की रचना की है।

४. अभिधानचिन्तामणि-व्युत्पत्तिरत्नाकर:

अंचलगच्छीय विनयचंद्र वाचक के शिष्य मुनि देवसागर ने वि० सं० १६८६ में 'हैमीनाममाला' अर्थात् 'अभिधानचिंतामणि' कोश पर 'व्युत्पत्तिरत्नाकर' नामक वृत्ति-ग्रंथ की रचना की है, जिसकी १२ श्लोकों की अन्तिम प्रशस्ति प्रकाशित है। जिसका उल्लेख जैसलमेर जैनभण्डागारीयग्रन्थानां सूचीपत्रम्, बड़ौदा, सन् १९२३, पृ० ६१ पर है।

मुनि देवसागर ने तथा आचार्य कल्याणसागरसूरि ने शत्रुंजय पर सं० १६७६ में तथा सं० १६८३ में प्रतिष्ठित किये गये श्री श्रेयांसजिनप्रसाद और श्री चन्द्रप्रभजिनप्रासाद की प्रशस्तियाँ रची हैं। इनकी हस्तलिखित प्रतियाँ जैसलमेर के ज्ञान-भंडार में हैं। (एपिग्राफिका इण्डिया २, ६४, ६६, ६८, ७१)

५. अभिधानचिन्तामणि-अवचूरि:

किसी अज्ञात नामा जैन मुनि ने अभिधान-चिन्तामणि कोश ४५०० श्लोकप्रमाण 'अवचूरि' की रचना की है, जिसकी हस्तलिखित प्रति पाटन के भंडार में है। इसका उल्लेख 'जैन ग्रन्थावली' पृष्ठ ३१० में है।

६. अभिधानचिन्तामणि-रत्नप्रभा:

पं० वासुदेव राव जनार्दन कशेलीकर ने अभिधानचिन्तामणि कोश पर 'रत्नाप्रभा' के नाम से टीका की रचना की है। इसमें कहीं-कहीं संस्कृत शब्दों के गुजराती अर्थ भी दिये हैं।

७. अभिधानचिन्तामणि-बीजक:

'अभिधानचिन्तामणिनाममाला-बीजक' नाम से तीन मुनियों की रचनाएं उपलब्ध होती हैं। बीजकों में कोश की विस्तृत विषय-सूची दी गई है।

८. अभिधानचिन्तामणिनाममाला-प्रतीकावलीः

इस नाम की एक हस्तलिखित प्रति भंडारकर ओरियन्टल रिसर्च इन्स्टीट्यूट, पूना में है। इसके कर्त्ता का नाम इसमें नहीं है।

संदर्भः

प्रकाशन–(क) महावीर जैन सभा, खंभात, शक सं० १८१८ (मूल)

(ख) यषोविजय जैन मोहनमाला, बड़ौदा (रत्नप्रभा वृत्ति सहित)

(घ) देवचन्द लालभाई जैन, पुस्तकोद्धार फंड, सूरत, सन् १९४६ (मूल)

(ङ) नेमि-विज्ञान-ग्रंथमाला, अहमदाबाद (मूल-गुजराती अर्थ के साथ)

१. भारतीय संस्कृति के विकास में जैन वाङ्मय का योगदान, प्रथम खण्ड,– डा० नेमिचन्द्र शास्त्री, प्रका० अ. भा. दि. जैन विद्वत् परिषद्, प्र० सं० १९८२, पृ० १८२।

२. उन्दुरुस्तुटुमो रन्ध्रबभ्रुर्दीना तु भूषिका।
स्याच्चिको वेष्मनकुलः पुंवृषो गन्धमूषिकाः।। त्रिकाण्डशेष, २, १०-११
तथा,
भूषिको भूषको वज्रदषनः खनकोन्दुरौ।
उन्दुरुर्वृष आखुष्च, सूच्यास्यो वृषलोचनः।। छछुन्दरी गन्धमूष्यां
–अभिधानचिन्तामणि, १३००-१३०१।

३. 'जलोच्छ्वास' (नहर) शब्द के लिए द्रष्टव्य है–
"परीवाहो जलाच्छ्वासे महीभृद्योग्यवस्तुनि।" – मेदिनीकोश ३४, ३३।
यही पंक्ति 'विश्वप्रकाश' में भी है।
"परिवाहा जलोच्छ्वासाः, कूपकास्तु विदारकाः' – अभिधान०, १०८८।

४. अभि० ९५३, मेदिनी– २८, ९३।

५. अभि० १३४३-४४।

६. अभि० तिर्यक्काण्ड १५९१-१६०३।

७. वही, १४४४-४५।

८. वही, १४५०।

९. A Comparative Dictionary of the Indo-Aryan Languages, by R.L.Turnar, London-1966, pp-148, 171, 511.

१०. भा० सं० के विकास में जैन वा० योगदान, पृ० १८३-१८४।

११. जैन साहित्य का बृहद् इतिहास, भाग-५, सं० पं० अंबालाल प्रो० शाह, प्रका० पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध संस्थान, वाराणसी, भाग-५ में इन सभी टीकाओं का विवरण है।

सहायक ग्रंथ

१. आचार्य भिक्षु ग्रन्थ, लेख – 'जैनकोश साहित्य' – डा० नेमिचन्द्र जैन, कलकत्ता-१९६१, द्वितीय खण्ड, पृ० १८९।

२. संस्कृत प्राकृत जैन व्याकरण और कोश की परम्परा – संपा० मुनि दुलहराज